श्रीकृष्णार्जुन युद्ध

एक भावपूर्ण, मनोरंजक, शिक्षात्मक कहानी

लेखक—

श्री पं० रामचन्द्र तिवारी

प्रकाशक—

मानवधर्म कार्यालय, पीपल महादेव, देहली।

प्रथम बार १६४३ | सर्वाधिकार सुरक्षित | मूल्य ।।)

प्रारम्भिक शब्द

भगवान् श्रीकृष्ण वचन से कर्मयोग के उपदेष्टा और कर्म से उसके साधक हैं, इसी से भगवान् हैं। प्रस्तुत कथा उनके पवित्र जीवन की एक घटना है, जो कर्मयोग की एक विशेष जटिलता को सुलझाती है।

महर्षि गालव तथा चित्रसेन आदि चरित्रों को मैंने कुछ दूसरे दृष्टिकोण से देखा है। आशा है, पाठकों को भी वह रुचिकर होगा।

देहली
विजय दशमी
सं० २०००

रामचन्द्र तिवारी

"उर्वशी का स्वास्थ्य अब भी सुधर नहीं रहा।"

"जान पड़ता है कि इस युद्ध में अश्विनी-कुमार जीतेंगे नहीं।"

"क्या कहती हो तुम? यमराज अश्विनी-कुमारों की समानता कर सकते हैं? उर्वशी की क्षणिक अस्वस्थता यमराज को अमरपुरी में अधिकार देने की कारण न बननी चाहिये।"

"तुम समझती नहीं। यद्यपि इतने दिन बीत गये हैं तो भी अर्जुन को वह भूली नहीं है और यही असफलता की शिला उसके स्वास्थ्य को उभरने नहीं देती।"

गन्धर्वों के राजा चित्रसेन गंगा के किनारे विहार के लिये पधारे थे। रानी उनके साथ थीं। दासियाँ और परिचारिकायें इधर उधर दौड़ रहीं थीं। रात्रि के समय अन्धकारमयी व्यस्तता जल में विलास कर रही थी। भागीरथी के दूसरी ओर के ऊंचे कगार पर स्थित विशालकाय वृक्ष जैसे अपने अस्तित्व को बचाये रखने का घोर प्रयत्न करने में धूमिल हो रहे थे और लताओं की लम्बी लम्बी भुजायें, लचकीले गुल्मों की विशाल टहनियां, पुण्य सलिल को अपने स्पर्श से गुनगुनाने को वाध्य कर रही थीं।

"रानी का शृङ्गारदान लाओ।" एक दासी चिल्लाई।

"जो आज्ञा।"

एक दासी ने दूसरी से कहा।

"क्या देवता होने से दिन में प्रकट होने का अधिकार हम से छिन गया है? मुझे तो यह रात्रि-विहार की उलूक-वृत्ति विशेष सम्मान्य नहीं लगती।"

"इसमें सम्मानता और असम्मानता की बात क्या है ? यह तो युगों से होता आया है।"

"फिर 'उलूक' तो मां लक्ष्मी का वाहन है उसके प्रति इतनी अश्रद्धा क्यों ?"

"अरे, राजा का मलयद्वीप से आया हुआ मक्खनी मछली का इत्रदान लाओ।" नदी तट से उच्च स्वर आया। दासियों में खलबली मच गई।

"कहां है वह इत्रदान ?"

"मैंने तो नहीं रक्खा।"

"मैंने तो तुझे सौंप दिया था।"

"कहां ? झूठ बोलती है।"

"मक्खनी मछली का इत्रदान शीघ्र लाओ।" आज्ञा दोहराई गई और दासियों के मुख पर से रंग उड़ गया।

वे इत्रदान नहीं लाई थीं। उसे सार्वजनिक उत्तर-दायित्व समझ कर सबने ही छोड़ दिया था, और अब राजा चाहते हैं मक्खनी मछली का इत्रदान। मक्खन जैसा कोमल और मछली जैसा स्पन्दित वायु में गूँजा 'मक्खिनी मछली का इत्रदान!' और

दासियां आपस में लड़ने लगीं। मुख्य चर ने चित्रसेन को सूचना दी।

"महाराज ! इत्रदान तो महलों में छूट गया !"

और चित्रसेन, राजा तो थे ही, तत्क्षण क्रुद्ध हो गये।

बोले, "किसने छोड़ा ? अच्छा, यह तुम सब लोगों का षड़यन्त्र है। मैं तुम सभी को दण्ड देता हूँ। अरे कोई है ! इन सबको उठाकर गंगा में फेंक दे।"

परन्तु वहां कोई न था। जब सब के सब अपराधी थे तो दण्ड-आज्ञा कौन ग्रहण करता और चित्रसेन ने देखा कि उनकी आज्ञा पालन नहीं हो रही है। क्रोध से वे लाल हो गये। उनकी सांसें भट्टी सी चलने लगीं।

"क्या बात है राजन् ?" रानी ने पूछा और राजा बोल नहीं सके। गन्धर्वराज और उनकी आज्ञा का घोर उल्लङ्घन ! उन्हें लगा कि सब और उनके अतिरिक्त जो शेष है, वह सबको अपने हाथों से सूली क्यों नहीं दे देता।

राजा होने के कारण स्वयं अपने हाथ हिलाने का विचार उनमें उत्पन्न न हुआ।

रानी ने समझा कि राजा तपस्या का नाट्य कर रहे हैं। यह एक खेल था जो वे खेला करते थे। राजा तपस्वी बनते और रानी अप्सरा बन कर उनकी तपस्या खण्डित करती और अब रानी ने चित्रसेन को पकड़ा और गोता लगा गईं। राजा जब अचानक पानी के नीचे गये तो अत्यन्त क्रुद्ध। परन्तु जब कुछ क्षण पश्चात् वे बाहर निकले तो कमल से खिले हुए। बोले,

"कल इन्द्र के यहां विशेष उत्सव है। मैंने इस बार दो नवीन रागिनियों का आविष्कार किया है।"

"अच्छा! बधाई है।" रानी ने कहा,

राजा को अपनी शीघ्रता पर क्षोभ हुआ। उन्होंने सोचा था कि बिना किसी के जाने नई रागिनी गाकर समस्त देव-लोक को चकित कर देंगे। दासियों को क्षमा प्रदान की गई और विमान शीघ्र प्रस्तुत करने की आज्ञा दी गई। सूर्य की किरणें जगत् के निकट आ रही थीं और यह समय था कि

देवता लोग अपने देवत्व को मर्त्य जीवों की दृष्टि से बचायें।

राजा ने रागिनियों की चर्चा क्या की उनका समस्त ध्यान उन्हीं पर केन्द्रित हो गया। वे जब गायन-विद्या का प्रश्न आता था तो घोर वैज्ञानिक थे। उसके सामने वे और सब बिलकुल भूल जाते थे। वे अपने मन में स्वरों के आरोह-अवरोह की कल्पना कर रहे थे और अपने चारों ओर की परिस्थिति के प्रति अत्यन्त उदासीन थे। देर हो जाने के कारण विमान शीघ्रता से उड़ा और आकाश में जैसे तारे उसी के भय से भाग चले।

रानी ने पान का बीड़ा और सुगन्धित खाद्य राजा के सम्मुख रक्खा। राजा सोच रहे थे कि कल की नवीन रागिनियां उन्हें देव-लोक में अत्यन्त उच्च पद प्रदान करेंगी। स्वरों की क्षमता देवों को चकित कर देगी, नाद का प्रभाव उन्हें गायक के सम्मुख झुका देगा, उनके हृदयों को हिला देगा। और गायन विद्या की साम्राज्य सीमा कई सहस्र वर्ग

मील बढ़ जायगी। इसका अर्थ होगा कि राजा चित्रसेन महाराजा हो जायँगे और उनकी रानी महारानी। उनका हृदय भावी सफलता से फूल उठा। भविष्य के सुनहरे स्वप्न उनके सम्मुख मूर्तिमान हो गये। अभी उनके वायुयान का चाँदी का रंग है, फिर सोने का होगा। और राजा ने देखा नहीं, कि क्या है। उन्होंने हाथ से अभ्यास वश एक बीड़ा उठाकर मुंह में रख लिया। रानी राजा को ध्यान मग्न देख सामने से हट गईं।

राजा ने देखा कि मुख में पान का बीड़ा जाते ही उनका ध्यान संगीत की ओर से विचल रहा है। वे गंभीर सृजक-कल्पना में अभिभूत थे। यह बाधा उन्हें भायी नहीं। उन्होंने पान का बीड़ा अध-कुचला खिड़की के मार्ग से बाहर थूक दिया और फिर स्वर-कल्पना में ध्यानावस्थित हो गये। स्वरों की स्वर्णिम मादक तरंगे फिर उनके सम्मुख लहराने लगीं। इन्द्र का शीस उन्होंने नवीन स्वर लहरी के ऊपर हिलता देखा और वे अपने महान् भविष्य पर महान् हो उठे।

भविष्य बालू के ढेर से अधिक और कुछ नहीं। उसके ऊपर महल नहीं चिना जा सकता और उन्हें पता नहीं था कि उनकी पान की पीक उल्का की भाँति उनके भविष्य पर घहरा चली है। उनकी समस्त कल्पनायें उसके आघात को सम्हालने में विशेष समर्थ न होंगी।

दो

गंधर्वराज जिस समय प्रस्थान कर रहे थे, उसी समय महर्षि गालव अपनी शिष्य मंडली सहित जाह्नवी तट पर नित्य कर्म के लिये पधारे हुए थे।

यह वह समय था जब सूर्य की सुनहरी किरणें जीवन से अठखेलियां करतीं पक्षियों के बच्चों को घोंसलों में गुदगुदाकर जगाती हैं। पत्ते पत्ते को छूने की जैसे चेष्टा करती हैं और भोले वे इस क्रीड़ा से ठगे जाकर खिलखिला उठते हैं। वायु के कर्ण कुहरों में वह ऐसी प्रभाती उँडेलती हैं कि वह चिर-चंचला अति-चंचला हो उठती है, और इन रश्मियों ने

गालव मुनि के तपस्या प्रशस्त ललाट का स्पर्श किया। हिमाचल के हृदय में जो करुणा पार्वतीय वियोग में उत्पन्न हुई थी उसे वे आज तक नहीं बहा पाये। वह जम-जमकर उनके हृदय पर हिम बन गई। वही करुणा जाह्नवी के रूप में निरंतर प्रवाहित हो रही है तभी तो भागीरथी चिरकल्याणकारिणी है। करुणा से कभी किसी का अहित नहीं होता और गालव मुनि गिरिराज की करुणा और दिनराज के प्राण-स्पर्श से पुलकित हो उठे।

महान् प्रकृति के इस उद्धारक वातावरण में उन्होंने महानतर परमात्मा की अनुभूति की। उन्हें लगा कि उनकी शारीरिक सीमायें अत्यन्त आनन्द-दायक रूप से क्षीण हो रही हैं और वे इस विशाल हरित आर्द्र विश्व के साथ एकात्म होने जा रहे हैं। उन्होंने सूर्य को अर्घ्य देने के लिये अंजलि में जल लिया, परन्तु इस ब्रह्मानन्द अनुभव ने उन्हें क्षण भर के लिये स्तंभित कर दिया। इतना सौंदर्य, इतनी शान्ति और प्राणों की इतनी सरल पुलक का अनुभव जीवन में कुछ ही क्षण कर पाते हैं और ऋषि ने

इन दैवी-क्षणों को ठहराये रखना चाहा। वे इस परमानंद में स्तब्ध थे। इस समय विश्व-व्यापक की उपासना ही नहीं उसकी अनुभूति उनका रोम-रोम कर रहा था।

पर संसार-नियंता ने कुछ शक्तियां चला दी हैं और वे चलती जाती हैं। विभिन्न विषमतायें, संघर्ष और घटनायें उनकी पारस्परिक क्रीड़ा से उत्पन्न होती हैं। जान पड़ता है कि वे नियमित नहीं और इस अनियमितता को हमने अवसर अथवा भाग्य की संज्ञा दे डाली है। जिस समय गंधर्वराज चित्रसेन अपने भविष्य का स्वर्णिम पट बुन रहे थे और महर्षि गालव विश्वात्मा के साथ एकात्मता अनुभव कर रहे थे, उसी समय यह विचित्र परन्तु अकाट्य शक्ति इन दोनों आनंदित प्राणियों में संबंध स्थापित करने में समर्थ हुई। देवताओं के गायक ने जो पान थूक दिया वह इसी शक्ति द्वारा परिचालित हो ऋषि की जल भरी अंजलि में आ गिरा। आकाश और मृत्युलोक में एक भीषण सम्बन्ध स्थापित हो गया।

ऋषि जैसे जागे। परमानंद में यह भंग उन्हें

भाया नहीं। पर ऋषि थे। क्रोध के ऊपर प्रभुत्व, साधना का विषय था, इसलिये क्रोध दबा पाने पर

विचलित भी हो गये।

अन्तर्नेत्रों से देखा कि चित्रसेन उनकी इस असुविधा का कारण है और उन्होंने यह भी देखा कि चित्रसेन ने इच्छा पूर्वक यह अपराध नहीं किया। उनकी उपासना खंडन का उत्तरदायित्व का स्थूल आधार चित्रसेन होने पर भी चित्रसेन निरपराधी है। परन्तु इससे क्या? शासन-व्यवस्था और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नियमों का आदर बनाये रखने का यंत्र तो चलेगा ही। ज्ञानी अथवा अज्ञानी उसके मार्ग में आने पर पीसा ही जायेगा। अग्नि जलायेगी ही। अबोध शिशु को वह छोड़ती नहीं; फिर गंधर्वराज कर्म के इस बंधन और बंधन के अभिशाप से क्यों बचें! ऋषि के ऊपर एक महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा। वे क्षमा कर सकते हैं; पर उन्हें क्षमा करने का कोई अधिकार नहीं। अपराध केवल उनके प्रति नहीं, समस्त सृष्टि के प्रति हुआ है। असावधानी अक्षम्य है और ऋषि का कर्तव्य निश्चित हो गया।

राजा को इसकी सूचना देनी होगी।

तीन

कर्म-बन्धन में स्वेच्छा से बंधना ही उससे स्वतन्त्र होना है। उस बन्धन में अपने को खो देने की प्रवृत्ति अत्यन्त आकर्षक है, और इसी स्थान पर विज्ञ भी अनभिज्ञ बन जाते हैं। ऋषि का निवास स्थान, बन, शान्ति का केन्द्र और सुषमा का आगार था। नगर, चाहे उसमें भगवान् विराजते हों, अशान्ति का गढ़ और मानव की निम्न प्रवृत्तियों का उत्तेजक है। ऋषि ने द्वारका में जो देखा वह ऐश्वर्य उनके वनवासी अनैश्वर्य पर विजयी न हो सका। कृत्रिमता और दिखावे की भावना कण-कण से टपकती देखी।

प्रतियोगिता तथा महत्वाकांक्षा को गली-गली बहते देखा। शरीर सुन्दर थे निसन्देह, पर मन की सरलता जैसे नगर निवासियों ने भगवान् को भेंट चढ़ा दी थी। ऋषि ठिठके। विचार उत्पन्न हुआ, कि क्या राजा के पास जाना ठीक हो रहा है? इस स्थान पर आने मात्र से उन्हें लगा कि भगवान् का जो अनुभव है उससे वे दूर चले आये हैं। परन्तु व्यवस्था का बन्धन तथा सामाजिक नियमों के प्रति उनका उत्तरदायित्व! वे समाज के नैतिक नेता हैं, इतनी असुविधा उन्हें सहनी होगी। द्वारिका-निवासियों ने देखा कि एक तपस्वी शिष्य मंडली सहित राजद्वार की ओर चला जा रहा है। शिष्ट पुरुषों ने झुक कर प्रणाम किया, दम्भियों ने मुँह बिचकाया और उत्सुकों ने सबसे पिछले शिष्य से पूछा, "ये कौन महात्मा हैं?"

"महर्षि गालव।"

"गालव?"

और यह समाचार कपूर की अग्नि की भांति पुरी में फैल गया। गालव द्वारिका में!

"तो यह महर्षि गालव हैं ?"

"हां ! क्या तेज नहीं देखते ?"

"सुना है ये तो महान् क्रोधी हैं।"

"पर मूर्ति तो अत्यन्त सौम्य है।"

"पता है क्यों पधारे ?"

"भगवान् के दर्शन को आये होंगे।"

"उंह ये लोग कहीं भगवान् के दर्शन को आते हैं। ये तो भगवान् को चाहे जहाँ बुला लें।"

"कोई कारण तो होना चाहिये !"

"जान पड़ता है तपोवन में कोई महान् दुर्घटना हुई है।"

"ऋषि अपने श्राप से संसार भस्म कर सकते हैं। क्या साधारण बात के लिये यहाँ तक दौड़े आवेंगे ?"

"अरे तुम जानते नहीं। इन लोगों के कर्म विचित्र होते हैं। इन्द्र को श्राप देकर नष्ट कर दें, पर तनिक सी चींटी को नष्ट करने के लिये राजा की सहायता मागेंगे। इनकी जाति ही विचित्र होती है। सभी मानसिक कार्यकर्ता ऐसे ही होते हैं। उनकी तर्क प्रणाली कब उन्हें किस ओर ले जायगी, कोई नहीं

कह सकता ।"

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारपाल ऋषि को देख हड़बड़ा कर उठ बैठे। झुककर दंडवत् किया। गिरते पड़ते राजा को सूचना देने दौड़े।

"ऋषि हैं ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"जी महाराज।"

"कौन ?"

"महर्षि गालव।"

"गालव ?"

और श्रीकृष्ण के मन में एक शंका उत्पन्न हुई।

'गालव इतनी दूर से चलकर यहाँ तक आयें !' श्रीकृष्ण ने सोचा 'और सर्व समर्थ गालव।' उनके मन में खटका लगा। अवश्य ही कोई टेढ़ी समस्या लाये होंगे। पर तभी लगा कि ऋषि के स्वागत में देर हो रही है।

तत्काल सिंहासन छोड़ उठ दौड़े। द्वार पर गालव की चरण रज माथे पर लगाई, और सादर महल में ले गये।

अभ्यर्थना तथा चरण पखारने के पश्चात्

श्रीकृष्ण ने प्रश्नवाचक दृष्टि से ऋषि की ओर देखा।

"राजन्!" ऋषि बोले, "संसार में कर्म-जाल अत्यन्त कठिन है। मनुष्य इससे भाग नहीं सकता और इसमें उलझकर दुःख न भोगने का केवल उपाय यही है कि जो सम्मुख आये उसे निर्मम आत्मिक सच्चाई से करता जाये। प्रेम और द्वेष को कर्तव्य के साथ न मिलाये।"

श्रीकृष्ण ने नतमस्तक सुना और आज्ञा की याचना की।

"राजन्! हम वनवासी हैं पर फिर भी राज्य-व्यवस्था के प्रति हमारा कुछ कर्तव्य है।"

"क्यों नहीं। महर्षि! आप ही लोगों की तपस्या से राज्य-व्यवस्था है, और राजा है। समाज का सुख और शान्ति ऋषियों के पुण्य प्रताप का फल है। राजा और राज्य-व्यवस्था सदा नियामक ऋषियों से आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं।"

"राजन्! जिस कार्यवश मुझे आना पड़ा वह वैयक्तिक दृष्टिकोण से यद्यपि सुकार्य नहीं, पर कर्म-व्यवस्था में मैं उससे बच नहीं सकता।"

"किससे आपका अपराध बन पड़ा है ?"

"राजन् ! घटना साधारण है। मैं प्रातःकाल भगवान् अंशुमाली को अर्घ्य दे रहा था कि आकाश से पान की पीक अंजलि में आ पड़ी। दोषी गंधर्व-राज चित्रसेन है। यह अब आपका कर्तव्य है कि आप उसे समुचित दंड दें, और यह मेरा कर्तव्य है कि मैं देखूं कि उसे दंड दिया जाता है।"

चित्रसेन का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण चौंक पड़े। चित्रसेन उनके इतने निकट न थे; पर उनके वे चारों घोड़े, जिनसे जुते रथ को उन्होंने कौरवों और पाण्डवों की सेना के मध्य में स्थापित किया था; जहाँ उन्होंने अपने जीवन के मनन का समस्त अनुभव अर्जुन को सुनाया था, और जहाँ उन्होंने बुझती बुझती चिंगारी से विकराल ज्वाला प्रस्फुटित की थी; वे चारों घोड़े, उनके नयनों के सामने घूम गये।

द्रोणरचित शकटव्यूह में घोर परिश्रम एवं रक्त से लथपथ उनके प्यारे प्यारे मुख उनके सम्मुख आ गये। अर्जुन के बाणों से रचित व्यूह के मध्य

भाग में रथ खोलकर उन्होंने अपने राजसी हाथों से उनकी मालिश की थी। वे किस प्रेम से उनका शरीर सूंघते थे यह स्मरण कर वे गद्‌गद् हो आये। कर्ण युद्ध में उनके और अर्जुन के प्राण क्या उन्हीं के द्वारा नहीं बचाये गये थे? युद्ध विजय के पश्चात् जब वे चित्रसेन के पास जाने लगे तो उनसे विदा होते समय वे पशु किस प्रकार रोये और हिनहिनाये थे, वह दृश्य इस समय उनके नयनों में जल भर लाया। उन घोड़ों के सम्बन्ध से चित्रसेन जैसे उनके अत्यन्त निकटवर्ती बन गये। चित्रसेन को, उन घोड़ों के स्वामी को, वे दंडित करें?

इस प्रश्न का उत्तर कर्म के लिये चाहे कितना ही सरल हो, पर हृदय के लिये अत्यन्त जटिलताओं से भरा हुआ था, और वे एक क्षण विचार मग्न मौन रहे।

श्रीकृष्ण के मन की अवस्था पढ़ना गालव के लिये अत्यन्त सरल था। बोले,

"राजन्! इसमें विचार को विशेष स्थान नहीं, बोलो अपराधी को दण्ड मिलेगा न?"

श्रीकृष्ण के मन के एक भाग ने कहा, 'धिक्कार है राजत्व को जो ऐसे कड़ुवे कर्तव्य उपस्थित करता है।'

और दूसरा भाग बोला, 'ओ कर्मयोग के प्रचारक! कर्म का चक्र नित्य है। वह तेरे क्या, किसी के रोके नहीं रुकेगा। उसकी गति से जो व्यक्तिगत सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं, वही तो मानव मानव में अन्तर बताते हैं।' और श्रीकृष्ण ने देखा कांटों से बिछा कर्तव्य-पथ उनके सम्मुख है। वे चित्रसेन को अपने हृदय की करुणा में डुबाकर दण्ड देंगे।

"क्यों राजन्! अपराधी को दण्ड मिलेगा न?" ऋषि ने दोहराया।"

"अवश्य।" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया।

"राजन्! चित्रसेन देवताओं का अपराधी है, उसे दण्डित करने में किसी प्रकार के ममत्व को स्थान नहीं मिलना चाहिये।"

श्रीकृष्ण ने हृदय पर पत्थर रख ऋषि को विश्वास दिलाया कि तीन दिन के भीतर वे चित्रसेन का वध कर देंगे।

ऋषि ने सन्तुष्ट हो तपोवन की ओर प्रस्थान किया और राजा को दृढ़मति होने का आशीष दिया।

चार

रात्रि का समय था। इन्द्र की सभा अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ नन्दन कानन में विराजमान थी। कुबेर, वरुण, यम यथास्थान बैठे थे। सेवकों और परिचारिकाओं के रत्नजटित आभूषण उन्हें देवताओं से भी अधिक वैभवशाली बना रहे थे। अप्सराओं का समूह सुरों के मनोरञ्जनार्थ अपने वाद्य ठीक कर रहा था और निकट ही उनकी सहायिकायें नृत्य की तैयारी में संलग्न थीं। यम ने कहा—

"देवराज, यह जो परिपाटी देव-जीवन की

इतने काल से चल रही है, अब जैसे इससे ऊब जाने को जी चाहता है।"

वरुण बोले, "मैं बहुत अंशों में धर्मराज से सहमत हूँ। हमारे जीवन की एकरसता नीरसता में परिवर्तित हो रही है।"

अग्नि ने कहा, "मित्रो, मैं आपसे असहमत होने की क्षमा चाहता हूँ; मुझे तो इस जीवन में आज भी उतना ही रस आ रहा है जितना कि सृष्टि के प्रारम्भ में।"

यम को जैसे अनल के इस कथन पर टिप्पणी करनी ही चाहिये। क्षणिक गम्भीरता के पश्चात् वे बोले—

"मुझे लगता है कि हमारी अमरता ही इस नीरसता का मूल है। हम जीते जाते हैं और हमें ज्ञात है कि ऐसे ही जीते जायंगे। यह भी आश्वासन है कि इस जीवन विधि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। मुझे तो यही आश्वासन सर्वाधिक दुखोत्पादक जान पड़ता है। मैं जानता हूँ कि मैं असन्तुष्ट हूँ। और जानता हूँ कि यह असन्तोष अनन्त काल

तक चला जायगा। इससे वह असन्तोष जैसे सहस-गुणित हो उठता है जिस समय मैं मृत्युलोक के जीवन पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि इस दिशा में मनुष्य आदि जीव हमसे अधिक सुखी हैं। वे केवल इतना ही जानते हैं कि जीवन में परिवर्तन अवश्य आयगा। मृत्यु आवेगी और उसके पश्चात् भविष्य न जाने और क्या-क्या अनुपम और मनोहर दृश्य अपने गर्भ से निकाल कर उनके सामने रख देगा। कभी कभी यह इच्छा होती है कि इस देवत्व पर लात मार कर मर्त्य जीवों में सम्मिलित हो जाऊं।"

प्रभञ्जन यथाशक्ति शान्त बैठे यम की शिकायत सुन रहे थे बोले, "भाई यम! देव-जीवन की नीरसता को सरस करने के लिये यहां गन्धर्व-राज चित्रसेन हैं।"

चित्रसेन देवों का यह वार्तालाप सुन रहे थे। उन्होंने देखा कि नवीन रागिनियों को प्रकाशित करने का अत्यन्त उपयुक्त अवसर है। यदि वे उनके प्रभाव से यम का असन्तोष मिटा सके तो उनकी

सफलता असाधारण होगी। बोले,

"देवराज! देव-जीवन में आनन्द के नवीन तत्व सम्मिलित करने के लिये ही मेरी सृष्टि है। अविनश्वर स्वरों का तारतम्य सृष्टि के मूल आनन्द का स्रष्टा है। यहीं से सङ्गीत की उत्पत्ति है। यह नवीन सङ्गीत अब तक के समस्त सङ्गीतों को भाव-उद्वेलन तथा हृदय स्फुरण में पराजित करके पीछे छोड़ देगा। देवराज। आज्ञा दीजिये कि मैं यह नवीन सङ्गीत देवसभा के सम्मुख उपस्थित करूं।"

सृजक कलाकार की गुरुता और गौरव से गन्धर्वराज का मुख गम्भीर हो गया। नवीन ज्योति से वह चमक उठा और उनके हृदय का तार तार सङ्गीत कल्पना से झङ्कार उठा। उन्होंने वीणा हाथ में ली। तारों पर इस प्रकार हाथ मारे जैसे कि तीन वर्ष का बालक कुल्हाड़ी से लकड़ी काटने की चेष्टा करे, परन्तु इन आघातों ने जिस नाद की सृष्टि की उससे देवताओं के हृदय ही नहीं, नन्दन-वन के वृक्ष भी पुलक पुलक उठे। ऐसी हृदयहारिणी भूमिका देवों ने किसी सङ्गीत की नहीं देखी थी।

यम का असन्तोष तिरोहित होता जान पड़ा। रुचि उनके मुख पर झलक आई और अन्य समस्त देवता साश्चर्य गन्धर्वराज के इस नवीन कृत्य को देखने लगे।

स्वर की मादकता बढ़ती जा रही थी और एक विचित्र रसमय वातावरण श्रोताओं के भीतर बाहर निर्मित हो रहा था। सब शक्तियों को पराजित कर सङ्गीत, कलाओं का मुकट मणि बनकर देवताओं पर शासन कर रहा था। सभा चित्र लिखित थी। तभी द्वारपाल आकर हाथ जोड़ देवराज के सम्मुख खड़ा हो गया।

"क्या है ?"

देवराज ने दृष्टि से पूछा।

द्वारपाल निकट आया और सूचना दी कि राजा चित्रसेन के यहां से उन्हें बुलाने के लिये एक चेरी आई है।

इस विघ्न के कारण चित्रसेन ने सङ्गीत बन्द कर दिया।

देवराज ने कहा, "चेरी को भीतर भेज दो।"

और दूसरे ही क्षण समस्त सभा ने देखा, गन्धर्व राज ने देखा, कि गन्धर्वों की रानी की सब से प्रमुख चेरी हाथ जोड़े देवराज के सम्मुख उपस्थित है। उसका मुख उतरा हुआ है, केश अस्त व्यस्त हैं और कपोलों पर आंसुओं के चिह्न स्पष्ट हैं।

चित्रसेन ने चेरी की ओर देखा और उनका हृदय आशङ्का से कांप उठा।

क्या बात है? आज इस गौरवमय समय में उनके यहां क्या दुर्घटना घटी?

चेरी से पूछना चाहा, क्या है? पर देवराज के सम्मुख उन्हें यह अधिकार न था।

देवराज ने प्रश्न किया, "चेरी! तुम्हारे दुखित होने का क्या कारण है? गन्धर्व रानी प्रसन्न तो हैं न?"

चेरी तत्क्षण बोल न पाई। सभा की उत्सुकता बढ़ी और साथ ही चित्रसेन की आशङ्का।

देवराज की दृष्टि ने पुनः प्रश्न दुहराया। चेरी ने रोते हुए कहा "देवराज! अत्यन्त दुखद समाचार

की मैं वाहिका हूँ अभी द्वारिका से एक चर आया है........"

द्वारिका का नाम सुन कर चित्रसेन को समाचार में कुछ विश्वास न हुआ। द्वारिका में श्रीकृष्ण हैं, जो उनके मित्रों में से हैं।

चेरी ने सूचना दी कि वह द्वारिका का चर समाचार लाया है कि तीन दिवस के भीतर श्रीकृष्ण ने गन्धर्व राज का........।

इससे आगे चेरी न बोल पाई। यम की रुचि विकसित हुई। बोले, "तो श्रीकृष्ण ने गन्धर्वराज के वध की प्रतिज्ञा की है ?"

"आपका अनुमान सही है।" दासी ने कहा।

चित्रसेन को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। श्रीकृष्ण और मित्र का वध करें! किसी की समझ में न आया। पर जब चर आया है तो बात सच्ची है, और उसका कारण भी वैसा ही दुर्निवार्य होगा।

सभा अब आगे नहीं चल सकती थी। सङ्गीत और नृत्य सब समाप्त हो गये। चित्रसेन चेरी के साथ अपने महलों को चले और देवलोक इस कुसमाचार को लेकर नाना कल्पना करने लगा।

पाँच

हस्तिनापुर के राज्य-भवन के एक भाग में विशेष प्रसन्नता और उत्साह था। सुभद्रा को समाचार मिला था कि श्रीकृष्ण कार्यवश मथुरा आ रहे हैं, और उनके साथ रुक्मिणी भी होंगी। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी साथ होंगे। अपने पितृपरिवार को देखे उन्हें पर्याप्त दिन हो गये थे। निश्चय हुआ कि भाई, भतीजे, भौजाई और नाती से मिलने का यह अवसर खोना न चाहिये।

इन लोगों की याद कर कर सुभद्रा का हृदय पुलक आया था। मथुरा में सब दो चार दिवस

एक साथ अत्यन्त आनन्द से बितायेंगे। इसी को लेकर आज दोपहर से योजना बन रही थी। उन्हें कल सन्ध्या समय तक मथुरा पहुंच जाना चाहिये। क्या सामान साथ चलेगा ? कौन कौन चलेगा ? इस पर विचार हुआ।

अर्जुन ने कहा, "कृष्णा को तो ले ही चलना होगा।"

सुभद्रा को कुछ भाया नहीं। उसे लगा कि अर्जुन का कृष्णा के प्रति मोह उसके कारण कम नहीं हुआ है। नारी-अहङ्कार को एक धक्का लगा। बोली,

"कृष्णा को क्योंन ले चलियेगा ? वह तो आप और भैया दोनों के लिये आवश्यक है।"

अर्जुन ने हँस कर बात टाल दी और सुभद्रा ने सोचा, वह और भैया फिर मथुरा में होंगे। पुरानी स्मृतियां सजग हो गयीं। विभिन्न सम्बन्धी नयनों के सामने फिर गये। सुभद्रा ने देखा कि उनमें से बहुत से कुरुक्षेत्र में उनसे बिदा ले चुके हैं। अब उनकी भेंट में पहिले जैसा रस क्या होगा ? परन्तु फिर भी वह भैया से

कितने दिनों के पश्चात् मिलेगी और अनिरुद्ध तो अब काफ़ी बड़ा हो गया होगा। इसी विचार धारा ने अभिमन्यु को उसके सम्मुख जीवित कर दिया। आज वह यदि होता तो''''''

मां के नयनों में आंसू भर आये। उसका हृदय चीत्कार उठा। अभिमन्यु! अभिमन्यु!! आज यदि वह होता तो! इतना राज्य, इतना ऐश्वर्य, आज यदि अभिमन्यु होता!

अर्जुन प्रबन्ध करने के लिये बाहर चले गये; और सुभद्रा को पुरानी स्मृतियां व्यथित करने लगीं।

अधिक समय तक वह दुःख का वेग न सम्हाल पाई। शय्या पर जा पड़ी और फिर जैसे बांध टूट गया। करुण सिसकियां उसके विशाल पञ्जर को कँपाने लगीं।

छः

चित्रसेन ने चेरी के मुख से जो सुना उससे उनका हृदय आशङ्कित अवश्य हुआ, परन्तु समाचार की सत्यता पर उन्हें सन्देह भी बना रहा। महलों में पहुंचे। उन्होंने द्वारिका से आये चर का स्वागत किया। देखा कि उसका मुख अत्यन्त करुण है, और उन्हें अब अपने सन्देह पर शंका होने लगी। दोनों ओर के कुशल प्रश्न के पश्चात् चर ने समस्त कथा चित्रसेन को कह सुनाई। चित्रसेन ने कोई भय अथवा प्राणमोह के चिह्न प्रकट नहीं किये।

चर से कहा कि श्रीकृष्ण से मेरा प्रणाम

कहना और निवेदन करना कि कर्म-चक्र को यदि मेरे कण्ठ पर ही होकर घूमना है तो वे कभी मुझे इसके अयोग्य न पायेंगे।

चर के चले जाने के पश्चात् परिस्थिति की वास्तविक गम्भीरता का अनुभव उन गन्धर्व महलों को हुआ।

श्रीकृष्ण ऋषि को दिये वाक्य लौटा नहीं सकते। और उनमें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने की शक्ति का भी अभाव नहीं है। वे सब समर्थ हैं। उनके सम्मुख चित्रसेन की कोई सत्ता नहीं। मित्रता की दुहाई देकर कर्म-की शृंखला से नहीं निकला जा सकता।

यह निश्चय हो गया कि चित्रसेन को मरना ही होगा। मृत्यु के अतिरिक्त अब और कोई मार्ग उनके लिये सम्मान का नहीं। अब उनका एक कर्तव्य है, और वह है मृत्यु के लिये प्रस्तुत होना।

श्रीकृष्ण के विरुद्ध कोई उपाय चलेगा नहीं। पर फिर भी एक बार सोच देखना अच्छा होगा। और इसलिये इष्टमित्रों में मन्त्रणा प्रारम्भ हुई।

वे वार्तालाप करने जा ही रहे थे कि महर्षि

नारद की वीणा का स्वर सुनाई पड़ा। वायु ने उन्हें खोज कर गन्धर्वराज की सहायतार्थ भेजा था। नारद का आना जैसे सूखते वृक्षों पर वर्षा का काम दे गया। आशा का एक झोंका उनके हृदय में आया और एक क्षीण ज्योति की रेखा अविश्वास के अन्धकार में से झांकती दिखाई दी।

स्वागत-अभ्यर्थना के पश्चात् मन्त्रणा आरम्भ हुई।

चित्रसेन ने कहा, "मित्रो, मैं कायर की भांति अपने प्राणों की रक्षा के लिये किसी की शरण नहीं जाऊंगा। न किसी में श्रीकृष्ण के विरुद्ध मेरी रक्षा करने की सामर्थ्य ही है। अपराध मेरा न होता तो मैं स्वयं उनसे युद्ध के लिये शस्त्र उठाता, यद्यपि उससे परिणाम में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु अब शीस समर्पण के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई प्रतिष्ठित मार्ग नहीं।"

नारद बोले, "गन्धर्व राज! निसन्देह तुम्हारी बातें वीरोचित हैं। परन्तु प्राणों की रक्षा अपने लिये नहीं, तुम्हें देवताओं के लिये करनी होगी। कल्पना करो कि तुम्हारे बिना देवपुरी की क्या दशा

होगी ? सुरों के मनोरञ्जन के लिये क्या रहेगा ? और तुम्हारे हट जाने से विधाता की योजना में एक महान् व्याघात उपस्थित हो जायगा।"

"नारद जी ! आपका कहना उचित है। देवपुरी में आप लोगों की साधु-सङ्गति छोड़ते मुझे भी महान् कष्ट हो रहा है। परन्तु यदि विधाता का कर्म-चक्र मेरे ऊपर ही होकर जाना चाहे तो मैं उसके मार्ग से हटने की तनिक भी चेष्टा न करूंगा।"

"गन्धर्वराज ! यह तुमने कैसे निश्चित कर लिया कि वह कर्म-चक्र तुम्हारी बलि चाहता है ? अपराध तुमसे अनजाने बन पड़ा है। कर्मचक्र इतना अन्धा नहीं है; और इतना अविचारी भी नहीं है।"

"ऋषि ! आप प्राणों का लोभ मुझे न दिलाइये। जीवन-यात्रा में यही महान् पाप का मूल है।"

"राजन् ! मैं प्राणों का मोह तुम्हें नहीं दिलाता परन्तु जिस कर्मपाश को तुम अकाट्य समझ बैठे

हो, उसी को कर्म से काटने का उपदेश देता हूँ।
उपाय करो और वह पाश खण्डित होकर दूर जा पड़ेगा।"

"ऋषिवर! आप जीवन की आशा दिला कर मेरे दुःख की वृद्धि ही कर रहे हैं।"

"अरे भले गन्धर्व! मैंने जीवन की आशा तो नहीं दिलाई। मैंने तो केवल कर्म-बन्धन से मुक्ति के लिये कर्म करने को कहा है। यह तो कर्म की गति पर है कि तुम्हारे प्राण रहें या जायें।"

गन्धर्वराज के मन्त्री बोले, "ऋषिराज! तो इस कर्म का मार्ग आप बतलाइये न।"

"अर्जुन गन्धर्वराज के मित्र हैं। यदि वे उनसे सहायता की याचना करें, तो पाण्डु-पुत्र शरणागत को त्यागेगा नहीं, और कर्मचक्र को दूसरी दिशा मिल जायेगी।"

"ऋषिराज!" चित्रसेन बोले, "आप मुझे भली प्रकार नहीं जानते। मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण अर्जुन के गुरु, सम्बन्धी और मित्र हैं। क्या आप मुझे इतना नीच समझते हैं कि मैं अपने प्राणरक्षार्थ,

अर्जुन पर ऐसा कर्तव्य लादूँ जो उनकी आत्मा को कष्टकारी हो।"

"राजन्!"

"मैं उनका मित्र हूँ। क्या मित्र का धर्म मित्र को कष्ट देना ही है? नहीं, मैं कृष्ण और अर्जुन में विरोध का कारण न बनूंगा।"

नारद ने भरसक प्रयत्न किया कि चित्रसेन अर्जुन की शरण में जाने को प्रस्तुत हो जाय। देवताओं के लिये उनकी जीवन रक्षा के प्रयत्न का कार्य उन्होंने अपने ऊपर लिया है। प्रारम्भ में ही उन्हें असफलता दृष्टिगोचर हो रही है। परन्तु इससे क्या वे अपना कार्य छोड़ देंगे?

"अच्छा राजन्! यदि तुम कर्मगति को अशुद्ध समझकर हठपूर्वक उसी पर डटे हो तो मैं क्या करूं! देवताओं की ओर से एक बार फिर मैं तुमसे अर्जुन की शरण-याचना का प्रस्ताव करता हूँ।"

"ऋषिवर, इस विषय में मैं असमर्थ हूँ। मैं इतिहास से यह नहीं कहलाना चाहता कि चित्रसेन ने अपनी प्राणरक्षार्थ कृष्ण और अर्जुन में कलह

उत्पन्न किया।"

"जैसी इच्छा तुम्हारी। अब मृत्यु की तैयारी करो।"

"चित्रसेन सर्वदा उसके लिये प्रस्तुत है।"

नारद चले गये। और चित्रसेन ने अपनी लेखनी एवं संगीत की पुस्तक उठा ली। जिन रागिनियों को वे देव सभा में गा नहीं पाये थे उन्हें यत्न पूर्वक पुस्तक में लिपि बद्ध करने लगे। मरने से पहिले यही एक कार्य था जिसे वे अधूरा नहीं छोड़ जाना चाहते थे।

नारद ने रनवास की ओर प्रस्थान किया। चेरियों ने ऋषि-आगमन की सूचना रानी को दी।

शोकग्रस्त रानी को ऋषि का आगमन चातक को स्वाति-बूंद के समान आनन्द दायक हुआ। सौभाग्य रक्षा की एक आशा उसमें उदय हो गई। वह उठी और अत्यन्त आदर पूर्वक ऋषि को आसन दिया।

"आज्ञा ? ऋषिवर !"

"रानी, तुम्हारे सौभाग्य पर विपत्ति सुनकर मैं

यहां आया हूँ। मैंने चित्रसेन से वार्तालाप किया है, मुझे लगता है कि उसके मस्तिष्क में कहीं कुछ···।"
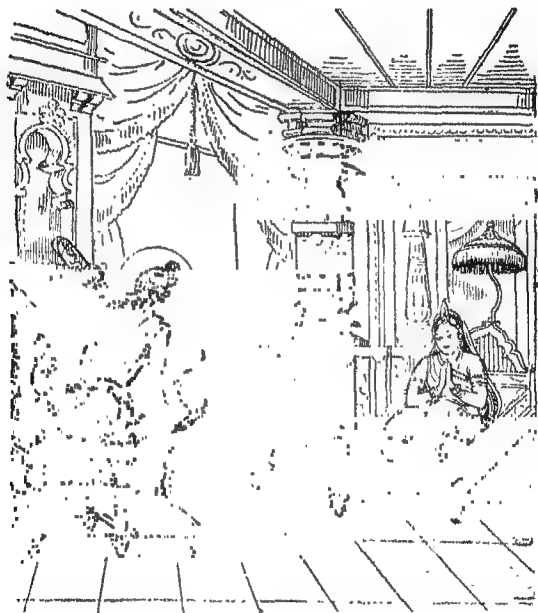
"ऋषिवर, पति के विरुद्ध कोई अभियोग मैं नहीं सुनूंगी।"

"रानी अभियोग नहीं है, यह तो उसी के लाभ की बात थी। देवताओं के हित के लिये तुम्हारे पति की प्राण रक्षा होनी ही चाहिये।"

"परन्तु देवता द्वारिकापति के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने के योग्य वीर्यवान् नहीं हैं।"

"इसके लिये दूसरा मार्ग है।"

"क्या?" रानी ने उत्सुकता से पूछा। क्या अब भी उसकी सौभाग्य रक्षा सम्भव है?

"महर्षि शीघ्र बताइये वह कौन सा मार्ग है? कौन वह वीर है जो कृष्ण के विरुद्ध मेरे पति को शरण प्रदान करेगा?"

"पृथ्वी अभी वीरों से शून्य नहीं है। यदि पाण्डुपुत्र अर्जुन चित्रसेन को अपनी शरण में ले लेते हैं, तो श्रीकृष्ण उसका वध नहीं कर सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।"

"और अर्जुन तो राजा के मित्र हैं।"

आशा से रानी के मुख पर लालिमा आ गई।

"हैं तो। परन्तु चित्रसेन अर्जुन की शरण में जाने को प्रस्तुत नहीं। वह कहता है कि प्राणरक्षा

के लिये मैं मित्र से भिक्षा नहीं मागूँगा।"

"यह तो उन्हीं के योग्य है।"

रानी का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। छाती फूल गई। ऐसे पति के साथ वह हँसते हँसते सती हो जायगी। नहीं, उसके पति प्राणरक्षा के लिये भिक्षा नहीं मागेंगे।

"रानी तुम भूलती हो। उसका जीवित रहना आवश्यक है। वह अपने प्राणों की रक्षा नहीं करेगा; पर तुम्हें करनी होगी। यह देवों का कार्य है।"

"ऋषिवर, परन्तु मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करूंगी जिससे पति की प्रतिष्ठा को किसी भांति का भी धक्का पहुंचे।"

"रानी प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है। कार्य होना ही चाहिये। लज्जा और अहंकार को इस कार्य में स्थान नहीं मिलना चाहिये।"

रानी के सम्मुख चित्रसेन की मृत्यु के साथ साथ जीवन के समस्त आमोद-प्रमोद जाग्रत हो गये। विभिन्न क्रीड़ाओं के मादक भाव पुनरावृत्ति के लिये

चिल्लाने लगे। और रानी को लगा कि ऋषि ठीक कहते हैं। राजा की प्राणरक्षा देवताओं के लिये ही नहीं उसके लिये भी अत्यन्त आवश्यक है। बोली,

"ऋषिवर, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी ही, ऐसा तो वचन नहीं देती; पर मुझे क्या करना होगा, यह मैं जानना चाहती हूँ।"

ऋषि रानी के मुख पर परिवर्तनों को ध्यान से देख रहे थे। रानी राजा के जीवन के लिये प्रयत्न करेगी, इसमें उन्हें कोई संदेह नहीं रहा।

उन्होंने कार्य की विधि समस्त सूक्ष्मताओं सहित रानी को बताई और फिर प्रभाव के लिये भगवान् पर विश्वास करके संसार भ्रमण को निकल पड़े।

सात

अर्जुन दिन भर राज-काज और श्रीकृष्ण से भेंट के लिये मथुरा जाने की तैयारी में लगे रहे। सुभद्रा ज्यों ज्यों अधिकाधिक विचारती त्यों त्यों उसे अभिमन्यु की स्मृति अधिकाधिक व्यथित करती। पर इस व्यथा में उसके हृदय को एक संतोष अनुभव हो रहा था।

वह शय्या पर पड़ी हुई विचारों में निमग्न थी, कि उसकी मुख्य चेरी उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी।

"क्या है री?" कुछ क्षण पश्चात् सुभद्रा ने पूछा।

"रानी जी, रक्षक कहते हैं कि एक नारी महलों के बाहिरी प्राचीर के निकट बैठी अत्यन्त करुणा से रो रही है। उसके वस्त्र रत्नजटित हैं। पूछने से कुछ बताती नहीं।"

सुभद्रा के हृदय में संवेदना उत्पन्न हुई। हो न हो कोई उसी के समान दुखिया होगी।

"जा उसे महलों में लिवा ला।"

और स्वयं पुनः विचार मग्न हो गई।

चित्रसेन की रानी ने ऋषि की योजना पर विचार किया। उसे लगा कि भीख मांगना, चाहे पति के प्राणों की ही हो, अपने को नीचे गिराना है। और उसने निश्चय कर लिया कि वह सहर्ष पति के साथ सती हो जायगी, पर किसी से भीख न मांगेगी।

वह व्यथित शय्या पर जा लेटी। कुछ क्षण पश्चात् उसे पति-वियोग की भीषण कल्पना अनुभव होने लगी। वह इस कष्ट की कल्पना भी नहीं सहन कर सकती थी। उसे लगा कि इतनी प्यारी प्यारी समस्त वस्तुयें छूट जायेंगी। और फिर जैसे उसे

किसीने विद्युत् से स्पर्श कर दिया हो। वह उठ खड़ी हुई।

एक उन्माद उस पर छा गया। अपनी सुधि उसे न रही। वस्त्रों की सुधि उसे न रही। वह जैसी थी वैसी ही चल पड़ी और हस्तिनापुर में पांडवों के महलों के निकट पहुंच कर, चाँदनी रात में एक चट्टान पर बैठ कर, उसने उच्चस्वर से करुण रुदन प्रारम्भ कर दिया। रात्रि उस रुदन से थर्रा उठी। करुणा की तरंगें चारों ओर व्याप्त हो गयीं। जिसने सुना उसे अपने जीवन में छुपे आँसू छू गये। और महल के रक्षकों ने पूछा,

"नारी तू कौन है जो इस प्रकार राज-प्रासाद के निकट बैठ कर रोती है?"

पर रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल इतना ही कहा कि वे अपने महल की रक्षा करें। उससे उनके महल को कोई हानि न पहुंचेगी।

यह समाचार धीरे धीरे महल में चेरियों के निकट पहुंचा और सुभद्रा को इसकी सूचना मिली।

मुख्य चेरी लगभग एक घड़ी में लौट आई।

सुभद्रा ने देखा कि वह अकेली आई है। उत्सुकता से जिस की प्रतीक्षा वह कर रही थी, वह उसके साथ नहीं है। प्रश्नवाचक दृष्टि से सुभद्रा ने चेरी की ओर देखा। चेरी ने कर-बद्ध निवेदन किया।

"रानी जी, रमणी सम्भ्रान्त कुल की ज्ञात होती है। उसकी करुणा की थाह अप्राप्य जान पड़ती है। परन्तु उसका आग्रह भी उसी भांति दुर्निवार्य है। कहती है कि मेरे दुख से रानी को दुखित क्यों किया जाय। जो मेरा सहनीय है, वह मैं दूसरों को क्यों बांटूँ!"

नारी के इन शब्दों का प्रभाव सुभद्रा पर अत्यंत गम्भीर हुआ। उसकी सहानुभूति उसके प्रति सहस्र गुणित हो उठी। उसे लगा कि ऐसी शिष्ट एवं सहनशीला का वह जितना उपकार करे थोड़ा है। और फिर रानी होने के कारण प्रजा जन के दुख निवारण का उत्तरदायित्व उसपर कम नहीं आता। वह करुणा भरी उठकर खड़ी हो गयी। और चेरी से बोली,

"चल मैं तेरे साथ चलती हूँ।"

और सुभद्रा चेरी को साथ ले उस रोने वाली के निकट चली।

सुभद्रा ने देखी एक करुणा की प्रति-मूर्ति।

"तुम कौन हो और क्यों रो रही हो?" सुभद्रा ने पूछा।

"रानी, मैं अपना दुख तुम्हारे सुखी परिवार पर नहीं लादना चाहती। विधाता की कुटिल रेखाओं का बन्धन स्वयं ही सहन करूँगी।"

"नारी, मैं रानी हूँ, तुम्हारा क्या कष्ट है, मुझे बताओ। मैं उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगी।"

"रानी जी, मेरा कष्ट साधारण नहीं है, और मैं जानती हूँ कि साधारण मनुष्य में मेरे कष्ट निवारण की शक्ति नहीं है।"

"नारी, तुम अपना कष्ट कहो। उसके दूर होने की सम्भावना अधिक है।"

"रानी जी, सहानुभूति वश मनुष्य अपनी शक्ति से बाहिर भी आश्वासन दे देता है।"

सुभद्रा को क्रोध हो आया। यह नारी है जो अपना कष्ट नहीं कहती और समझती है कि कृष्ण

की बहिन और अर्जुन की पत्नी सुभद्रा साधारण स्त्री है। आवेश में आकर बोलीं, "नारी, अपना कष्ट कह। वह अवश्य दूर होगा।"

"रानी जी, मैं नहीं चाहती कि आप अपनी सामर्थ्य से बाहिर मुझे आश्वासन दें। मेरी विपत्ति अत्यंत असाधारण है।"

"नारी, विपत्ति कैसी भी हो, सुभद्रा कहती है कि वह उस विपत्ति से तेरा उद्धार करेगी।"

"रानी की जय हो। पर रानी जी, आपके आश्वासन पर मुझे पूर्णतया विश्वास नहीं होता।"

"अविश्वासी नारी, क्या तू बहुत ठगी गई है ? सुभद्रा अपने सौभाग्य की सौगन्ध खाकर कहती है कि वह इस विपत्ति से तेरा उद्धार करेगी। अब बता तू कौन है और तेरी विपत्ति क्या है ?"

"रानी जी की जय हो। मैं गंधर्वराज चित्रसेन की स्त्री हूं।"

"आप राजा चित्रसेन की रानी हैं ?"

"जी।"

"वे हमारे परम शुभचिन्तक और मित्र हैं।

हम उनकी सहायता कर सकें इससे बढ़कर सौभाग्य का विषय हमारे लिये क्या होगा। शीघ्र बताइये आप पर क्या विपत्ति आयी है ?"

"रानी जी, विपत्ति महान् है। आपने प्रतिज्ञा करली है फिर भी अपना दुर्भाग्य कहते मेरा हृदय कांपता है।"

"रानी, निःसंकोच कहो। पाण्डव प्राण रहते शरणागत को त्यागनेवाले नहीं।"

"रानी जी, श्रीकृष्ण ने मेरे पति का तीन दिन में बधकर डालने की प्रतिज्ञा की है। आपको उनकी रक्षा करनी होगी।"

"भैया ने चित्रसेन का वध करने की प्रतिज्ञा की है ?"

"जी"। और चित्रसेन की रानी ने समस्त कथा कह सुनाई।

कर्म की गति! आज बहिन को भाई की प्रतिज्ञा के विरुद्ध.....।

उसे महान् धक्का अनुभव हुआ। अभी कुछ क्षण पहिले वह कृष्ण से मिलने की बात सोच रही थी।

जाने की तैयारी अब भी हो रही है। और अब वह इस कलह में फँस गयी है।

"रानी जी, मैंने पहले ही निवेदन किया था कि कार्य कठिन है।"

"जाओ, राजा को ले आओ। जब तक सुभद्रा है, तब तक तुम्हारा सौभाग्य सुरक्षित है।"

"रानी की जय हो।"

और इसके एक प्रहर पश्चात् राजा चित्रसेन महल की अतिथिशाला में पाण्डवों के अतिथि होकर ठहर गये।

आठ

चित्रसेन को शरण देकर सुभद्रा को जहाँ एक प्रसन्नता हुई, वहाँ उसे यह भी अनुभव हुआ कि उसकी पारिवारिक और मानसिक शान्ति के लिये यह उचित नहीं हुआ है। परन्तु वह क्षत्राणी थी और उससे भी ऊपर कृष्ण की बहिन तथा कुरुकुल की वधू थी।

आचरण के मूल नियम बनाकर सब दशाओं में उसका पालन यही उनका धर्म था, परन्तु फिर भी एकान्त में कृष्ण से विरोध का ध्यान कर वह दुःखित हो गई। अर्जुन विभिन्न कार्यों से निवृत्त हो जब

महलों में आये तो उन्होंने देखा कि सुभद्रा का मुख उतरा हुआ है। उन्हें पता है कि गीतापति की भगिनी होने पर भी सुभद्रा अभी तक पुत्र-शोक पर विजयी नहीं हो पाई। पांडवों का ऐश्वर्य जितना विस्तार पा रहा है उतना ही सुभद्रा को अभिमन्यु की आवश्यकता अधिक अनुभव हो रही है। सुभद्रा ही क्यों, अर्जुन भी उसकी स्मृति में व्यथित हो जाते हैं। सुभद्रा को दुखी देखकर अर्जुन ने उसे सहानुभूति से हृदय से लगा लिया और पूछा,

"सुभद्रे ! दुखी क्यों हो ? कल मथुरा चलने का पूर्ण प्रबन्ध मैं कर आया हूँ।"

सुभद्रा ने हृदय में अपना उत्तरदायित्व अनुभव किया। बोली, "यह मथुरा जाना नहीं हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या, कर्म-चक्र इसका विरोधी जान पड़ता है।"

"पहेलियां न बुझाओ रानी !"

"यह पहेली नहीं है। यह नियति का अकाट्य प्रवाह है।"

"बात क्या है ?"

"गंधर्वराज चित्रसेन पधारे हैं।"

"तो इसमें दुःखी होने की क्या बात है ? वे तो अपने मित्र हैं और मित्रों का आगमन सदा सुखदायी है।"

पर सुभद्रा की गम्भीरता इतने वार्तालाप से टूटी नहीं। अर्जुन ने आग्रह पूर्वक कहा, "सुभद्रे ! बताती क्यों नहीं, मैं तुम्हें व्यथित नहीं देखना चाहता।"

और सुभद्रा बोली, "मैंने भैया के विरुद्ध चित्रसेन को शरण प्रदान की है।"

"श्रीकृष्ण के विरुद्ध चित्रसेन को शरण, इसका अर्थ क्या है ?" और तब सुभद्रा ने संपूर्ण कथा धनंजय को कह सुनाई।

कथा सुनकर अर्जुन गम्भीर हो गये।

"यदि श्रीकृष्ण इसमें न होते तो बात अनुचित न थी।"

"तो क्या धर्म स्थापन करनेवाले के लिये धर्म की गति बदल जायगी ?"

सुभद्रा को लगा अर्जुन उसकी सहायता से पीछे हट रहे हैं। अर्जुन बोले—

"भद्रे! श्रीकृष्ण के सम्मुख मुझे शस्त्र धारण करना शोभा नहीं देता। उनके हमारे ऊपर जितने उपकार हैं, उनका प्रतिफल देने का मार्ग यह नहीं।"

"आपके और श्रीकृष्ण के पारस्परिक सम्बन्धों के कारण क्या युगों से प्रचारित क्षत्रिय धर्म बदल जायगा?"

"मैं यह नहीं कहता। पर श्रीकृष्ण के विरुद्ध मेरा शस्त्र-ग्रहण असम्भव है।"

"यदि आप ऐसा समझते हैं तो ठीक है। शरण मैंने प्रदान की है और समय आने पर आप देखेंगे कि कृष्ण की बहिन कृष्ण के विरुद्ध कितने शक्तिशाली आयुध एकत्रित कर सकती है। बालपन में मैंने भी युद्ध-विद्या की शिक्षा पाई है उसकी परीक्षा का अवसर आ गया जान पड़ता है।"

"रानी!"

"और आप देखेंगे कि सुभद्रा के जीवित रहते भैया चित्रसेन के शरीर को हाथ नहीं लगा सकते।"

अर्जुन के लिये यह विचित्र परिस्थिति थी। उनकी प्रकृति में एक कमी थी और वह यह कि वह कर्तव्य अकर्तव्य का निर्णय शीघ्र न कर पाते थे। और कर्तव्यों को प्रायः अकर्तव्य की श्रेणी में डाल देते थे। सुभद्रा के वाक्यों ने उनकी महान् बलशाली, पर निद्रित आत्मा को जैसे हाथ पकड़कर झकझोर दिया, वह करवट लेकर उठ बैठी। सुभद्रा और कृष्ण के युद्ध की कल्पना उन्होंने की। भाई और बहिन के इस युद्ध का परिणाम चाहे जो हो, उनकी अप्रतिष्ठा की पूर्ण व्यवस्था उसमें है। बोले, "सुभद्रे ! मैं अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाया।"

"शीघ्र निश्चय की आवश्यकता नहीं। जीवन पड़ा है निश्चय कर लीजियेगा।"

अर्जुन को बात लग गई। बोले, "सुभद्रा ! कल हम लोग मथुरा न जा सकेंगे। पर श्रीकृष्ण को यह समाचार तो देना ही होगा कि अर्जुन ने उनके विरुद्ध चित्रसेन को शरण प्रदान की है।"

"हां, यह अत्यन्त आवश्यक है।"

"मैं अभी दूत भेजे देता हूँ।"

नौ

मथुरा में मामा कंस के महल श्रीकृष्ण के आगमन के लिये बड़ी तत्परता से सजाये गये, और श्रीकृष्ण आकर उन महलों में ठहरे। विचार था कि बालपन में जिन भूमि-खंडों, लता, वृक्षों से उनका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया था, वे सब एक बार उन्हें पुनः दर्शन के लिये निमंत्रित कर रहे थे। केवल प्रतीक्षा थी इन्द्रप्रस्थ से अर्जुन सुभद्रा आदि के आने की। उसके पश्चात् उनका व्रज भ्रमण का कार्य-क्रम बन सकेगा।

चित्रसेन वध उन्हें कल तक कर देना है, पर

इसकी उन्हें विशेष चिन्ता न थी, क्योंकि यह कार्य उनके चक्र के लिये कुछ ही क्षणों का था; इसलिये वे इस ओर से निश्चिन्त थे। कर्तव्य निर्धारित हो जाने के पश्चात् उससे अलग रहना उनके जीवन की एक वास्तविकता थी। रात्रि के समय जब रुक्मिणी ने उन्हें जगाया तो उन्होंने अलसाये स्वर से पूछा, "क्या है ?"

"इन्द्रप्रस्थ से दूत आया है और कहता है कि वह अत्यन्त आवश्यक पत्र लाया है। उत्तर अभी चाहिये।"

"अर्जुन नहीं, दूत आया है ?"

"हां।"

और किसी अशुभ समाचार की आशंका से श्रीकृष्ण हड़बड़ा कर उठ बैठे। चर को तत्क्षण अपने निकट बुलाया। पत्र पढ़ा।

अर्जुन ने सारी घटनावली उनके सम्मुख रखदी थी, और आने की असमर्थता प्रकट की थी। कर्तव्यों के इस संघर्ष में उनका क्या मत है, इस विषय पर श्रीकृष्ण की सम्मति मांगी थी।

पत्र पढ़कर कृष्ण मुस्काये और तत्क्षण उत्तर

लिखकर दूत को दे दिया।

दूत राज्य के सबसे तेज घोड़ों की सहायता से लगभग एक प्रहर समय में इन्द्रप्रस्थ वापिस आगया। अर्जुन और सुभद्रा के लिये वह रात्रि निद्रा की न थी। कर्तव्यों के इस संघर्ष की चिनगारियों से उनका वर्त्तमान ज्वालामय हो उठा था।

इस ज्वाला के शान्त होने पर क्या बचेगा, यह चिन्तन का विषय था। अर्जुन ने तत्काल पत्र खोल डाला।

"क्या लिखा है भैया ने ?" उत्सुकता से सुभद्रा ने पूछा।

अर्जुन पत्र पढ़कर गम्भीर हो गये। बोले, "तुम्हारे भैया विचित्र हैं। लिखते हैं, चित्रसेन को शरण देना मथुरा आने के कार्यक्रम में क्यों बाधक होना चाहिये। यदि तुमने उसे शरण दी है तो क्षत्रियोचित ही है। तुम भी आओ और चित्रसेन भी आये। मैं ध्यान रक्खूंगा कि वह तुम्हारी शरण में है और बिना तुम्हें युद्ध में पराजित किये उसका वध नहीं करूँगा। तम्हारे यहां आगमन से मेरे

और तुम्हारे दोनों के कार्यों में सुगमता हो जावेगी।"
यह कहकर उन्होंने पत्र सुभद्रा की ओर बढ़ा दिया।

फिर बड़बड़ाये। 'बिना अर्जुन को पराजित किये······।' अर्जुन विजय और मृत्यु के बीच की वस्तु नहीं स्वीकार करेगा, चाहे वह श्रीकृष्ण के हाथों ही क्यों न हो। और इसके पश्चात् मथुरा जाने की तैयारी प्रारम्भ हो गई।

दस

अर्जुनादि जिस समय मथुरा पहुंचे तो दुपहरी ढल चुकी थी। श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये लगभग डेढ़ प्रहर का समय ही शेष था। सुभद्रा और अर्जुन ने चित्रसेन को शरण प्रदान की है, यह महर्षि गालव ने जान लिया था और उन्होंने उचित समझा कि वह स्वयं जाकर अपने सामने अपराधी को दण्डित करायें। चित्रसेन से उनका व्यक्तिगत द्वेष न था। ऋषित्व के उत्तरदायित्व के नाते वे यह कर रहे थे।

स्वागत के पश्चात् यादव और पाण्डव जब बैठे

तो कृष्ण बोले, "अर्जुन ! और बातें पीछे होती रहेंगी। मेरी प्रतिज्ञापूर्ति के लिये कुछ घड़ियां शेष हैं, इस विषय में क्या होगा आओ पहिले इसका निर्णय करलें।"

इसके पश्चात् कृष्णार्जुन युद्ध की तैयारी हुई। महाभारत के रथी सारथी प्रतिद्वन्दी के रूप में आमने सामने उपस्थित हुए।

दो घनिष्ठ मित्र कर्मपाश में बँधे शस्त्र लेकर सम्मुख आये और गुरु शिष्य एक ही ज्ञान की सत्यता सम्पादित करने के लिये विरोधी पक्षों में खड़े हुए।

अवसर अत्यन्त गम्भीर था। गंधर्व रानी का सौभाग्य, चित्रसेन के प्राण, गालव का नैतिक उत्तरदायित्व, श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा, सुभद्रा का वचन और अर्जुन का क्षात्रधर्म एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हो गये।

इस युद्ध के फल के ऊपर कितना निर्भर करता है ? कौन इस युद्ध में विजयी होता है ?

सन्देह नहीं कि कृष्ण बुद्धि और बल में श्रेष्ठतर

हैं। उनके सुदर्शन की अमोघता विश्व विदित है। और दूसरी ओर संसार का सर्वश्रेष्ठ धन्वी अर्जुन है, जिसके हस्त कौशल को कोई पाता नहीं। महाभारत में शस्त्र सञ्चालन के अनुभव ने जिसे अद्वितीय बना दिया है, जो इच्छानुसार शंकर के पाशुपत का प्रयोग कर सकता है।

विजय की सम्भावना जितनी एक ओर थी उतनी ही दूसरी ओर। पराजय का भय जितना कम एक ओर था उतना ही दूसरी ओर। कुछ के हृदय में भय था कि सुभद्रा कहीं श्रीकृष्ण की दुर्बलता और अर्जुन की शक्ति न बन जाये। पराजय न यादव स्वीकार करेगा और न पाण्डव। एक को मरना होगा। तो क्या आज श्रीकृष्ण अर्जुन के हाथों मारे जायंगे ? असम्भव नहीं। अर्जुन भीष्म और कर्ण के विजेता हैं। और यह सब पर विदित है कि श्रीकृष्ण भीष्म और कर्ण के समान निपुण लड़ाके नहीं हैं।

अथवा क्या अर्जुन अपने गुरु के हाथों प्राण-त्याग करेंगे ? पर इसीसे श्रीकृष्ण चित्रसेन वध की

प्रतिज्ञापूर्ण नहीं कर सकेंगे। अर्जुन के वध के पश्चात् सुभद्रा का वध आवश्यक होगा।

ऐसे विभिन्न विचार दर्शकों के हृदयों में घूम रहे थे। कर्मपाश किस कुटिल जटिलता से जीव को लपेटता है, इसे कुछ लोग समझाने और समझने का प्रयत्न कर रहे थे कि श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य का नाद आकाश को कँपाने लगा और उसके पश्चात् अर्जुन के देवदत्त की हृदय दहलानेवाली ध्वनि सुनाई पड़ी।

युधिष्ठिर ने गालव से कहा, "ऋषिवर यह जो युद्ध हमारे सम्मुख ठन रहा है इसका परिणाम मुझे शुभ नहीं दिखाई देता।"

युद्ध की सम्भावना से सभी पाण्डव वहां आये थे।

"धर्मराज, परिणाम की शुभता और अशुभता की व्याख्या का अधिकार हम जन्म लेते ही त्याग चुके हैं। केवल धर्म पर दृढ़ रहने का अधिकार हमारा है। यदि उस सर्वहितकारी धर्म में से दो सद्तत्व हमें परस्पर विरोधी दृष्टिगोचर होते हैं तो हमें

विश्वास रखना चाहिये उस विरोध का परिणाम सर्वदा शुभ ही होगा। इसलिये राजन्! मूलधर्म को गहकर परस्पर विरोधी दीखने वाले कार्य भी कर्मयोगी को करने होते हैं।"

तभी बाणों की सनसनाहट से वायुमण्डल थर्रा उठा। गाण्डीव की प्रत्यंचा का शब्द महाभारत की स्मृति हरी करने लगा। और सब दर्शकों का ध्यान दोनों योद्धाओं की ओर आकर्षित हुआ।

सुभद्रा का हृदय धड़क उठा। रुक्मिणी विचलित हुई। गंधर्व रानी अपना समस्त ध्यान एकत्रित कर युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगी। दर्शकों के हृदय में दो महान् विरोधी शक्तियां आशायें और उत्सुकतायें उठा और गिरा रही थीं। गाण्डीव से निकले दस बाण श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श करते भूमि में धँस गये और श्रीकृष्ण को अनुभव हुआ कि अर्जुन का हस्तकौशल असाधारण है।

श्रीकृष्ण के धनुष से पांचबाण अर्जुन की केश-राशि स्पर्श करते आकाश में विलीन हो गये।

अर्जुन ने अनुभव किया कि श्रीकृष्ण का शर-सञ्चालन अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। उन्हें कृष्ण के साधारण प्रहारों से भी पूर्ण सतर्क रहना पड़ेगा। और इस प्रणाम तथा आशीष के पश्चात् दोनों योद्धा एक दूसरे को पराजित करने की चेष्टा करने लगे। दोनों जानते थे कि पराजय नाम की वस्तु विपक्षी स्वीकार न करेगा। इसलिये पराजय नहीं वे विपक्षी को मृत्युदान देने के प्रयत्न में लगे थे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण के ऊपर देवताओं से प्राप्त तीन बाण मारे परन्तु श्रीकृष्ण ने अपने एक बाण से ही उनका निवारण कर दिया और अर्जुन पर सर्पबाण से प्रहार किया।

यह बाण अपने विषैले मुख से ज्वाला उगलता विद्युत्गति से अर्जुन की ओर दौड़ चला। गंधर्व हृदय की धड़कन एकाएक जैसे बन्द हो गयी। सुभद्रा स्तब्ध रह गई। उस बाण की ज्वाला में अर्जुन बिल्कुल छिप गये, तभी अर्जुन ने तरकश से नकुलबाण निकाला और उसके छूटते ही दर्शकों ने देखा कि सर्पबाण के खंड खंड हो गये हैं, और वह अपनी विशाक्त अग्नि

में स्वयं ही जल रहा है। देवताओं ने अर्जुन की इस सफलता की बड़ी प्रशंसा की और उस पर आकाश से पुष्प वर्षाये। युद्ध जारी रहा, दोनों पक्ष समान बलवान् थे। अर्जुन ने तभी श्रीकृष्ण का सिखाया मोहनास्त्र निकाल लिया और अभिमंत्रित करके अपने गुरु पर छोड़ दिया।

श्रीकृष्ण इस बार कदाचित् तनिक असावधान थे। उन्होंने इसके निवारण के लिये जो बाण चलाया वह चूक गया और मोहनास्त्र के प्रभाव से वे मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े।

गंधर्व हृदयों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। यादवों और पाण्डवों की दशा विचित्र थी। वे न हँस सकते थे और न रो ही सकते थे। श्रीकृष्ण को भूमि पर गिरते देखकर अर्जुन ने शस्त्र फेंक दिये। जाकर उनके शीस को गोद में ले लिया, और परिचर्या प्रारम्भ की। कुशल उपचार से श्रीकृष्ण ने शीघ्र ही चेतना प्राप्त की। अर्जुन को अपने निकट देखकर वे मुस्काये, बोले, "धनंजय सावधान, अब मेरी बारी है।"

अर्जुन वैसे सब प्रकार कृष्ण से झुकते थे, पर युद्ध की ललकार वे सहन न कर सकते थे। बोले,

"देखा जायगा।"

और उन्होंने लौटकर अपने शस्त्रास्त्र उठा लिये।

श्रीकृष्ण ने धनुष बाण फेंक सुदर्शन हाथ में लिया और उसे घुमाना प्रारम्भ किया। उस चक्र की भयंकर ज्वाला धीरे धीरे विस्तार पाने लगी। चक्र का यह प्रलयङ्कर रूप देखकर गंधर्व, देवता, पाण्डव, सुभद्रा सबका हृदय बैठ चला। निश्चय ही इस अमोघ-चक्र से अर्जुन बचेंगे नहीं। पर जिस समय चक्र की ज्वाला विस्तार पा रही थी, उसी समय अर्जुन के नेत्र एक भीषण हिंसावृत्ति से जल उठे। कृष्ण उसके सम्मुख कर्ण से भी अधिक बैरी हो गये और उन्होंने भगवान् शंकर का स्मरण कर पाशुपत निकाल लिया।

रुद्र के इस महान् संहारक की दीप्ति शीघ्र ही आकाश में व्याप चली। जिन लोगों के हृदय बैठ रहे थे उनमें नवीन आशा का संचार हुआ; परन्तु कुछ क्षणों में लोगों ने देखा कि वे दोनों शस्त्र अभी

योद्धाओं के हाथ से निकले नहीं हैं फिर भी युद्धस्थल विनाशक लपटों से भर गया है, और भयकारी विस्फोटों के शब्द सुनाई पड़ने लगे हैं। प्रलय की गर्जना जैसे दूर से संसार की ओर चली आ रही है। शस्त्रों के ताप से देवों की आकाश में स्थिति असंभव हो गई।

शीघ्र ही ब्रह्मा को समाचार मिला कि सृष्टि की पालक और संहारक महाशक्तियां एक दूसरे को नष्ट करने पर तुल आई हैं। कृष्ण अर्जुन विरोध का रूप ले, वे प्रलय को जन्म देना चाहती हैं। सृष्टि के जन्मदाता को सृष्टि का यह विनाश असह्य हो गया। वे तत्काल युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और अर्जुन तथा कृष्ण के बीच जा खड़े हुए।

उच्च स्वर से उन्होंने कहा, "वीरो! सृष्टि की रक्षा के लिये अपने शस्त्र वापिस लो।" और इसके साथ उन्होंने मनोवैज्ञानिक शक्तियों को श्रीकृष्ण और अर्जुन में मानसिक परिवर्तन उपस्थित करने की आज्ञा दी।

ब्रह्मा के इस अन्तर और बाह्य आक्रमण को सम्हालने की शक्ति किसी प्राणी की नहीं थी।

श्रीकृष्ण का चक्र और अर्जुन का पाशुपत दोनों शान्त हो गये। यादव और पांडवों के मुरझाते हृदय खिल उठे और गंधर्वों के हृदय में एक नवीन आशंका उत्पन्न हो गई।

श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कहा, "विधाता! आपकी आज्ञानुसार मैंने युद्ध बन्द कर दिया परन्तु चित्रसेन वध की जो मैंने प्रतिज्ञा की है वह कैसे पूरी हो?"

ब्रह्मा मुसकाये, बोले,

"द्वारिका-पति! इस विषय के आप मुझसे अधिक ज्ञाता हैं। मेरा कार्य सृष्टि को बनाये

रखना भर है। इसके आगे की व्यवस्था में कोई भाग लेने में मैं नितान्त असमर्थ हूं।"

"परन्तु कोई न कोई मार्ग आप सुझा ही सकते हैं।"

ब्रह्मा ने महर्षि गालव से प्रार्थना की कि वे चित्रसेन को क्षमा करदें और श्रीकृष्ण को प्रतिज्ञा बंधन से मुक्त करें।

गालव बोले, "चतुरानन! आपकी आज्ञा मैं निसंकोच शिरोधार्य कर सकता हूँ, यदि आप मुझे मेरे नैतिक उत्तरदायित्व से मुक्त होने का कोई मार्ग बतादें। चित्रसेन को क्षमा करने का मुझे कोई अधिकार नहीं और यदि राजा उसे दण्ड देने में असमर्थ हैं तो उन्हें भी क्षमा करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। हम वनवासियों पर व्यवस्था का जो नैतिक उत्तरदायित्व है, उसे मैं किसी प्रकार भी नहीं त्याग सकता। मैं जानता हूँ कि मेरा कार्य अत्यन्त कष्टपूर्ण है। कंस आदि दुष्टात्माओं के विनाशक, महाभारत के कर्णधार के प्रति मेरी श्रद्धा किसी से कम नहीं। पर जिस

कर्मबन्धन से मैं आवेष्टित हूँ, उससे निकलने का कर्त्तव्य-पालन को छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं।"

ब्रह्मा चुप होगये। सृष्टि विनाश की सम्भावना वे रोक चुके थे। आगे क्या होता है इसमें उन्हें विशेष रुचि न थी।

गंधर्वराज के प्राण कण्ठ को आरहे थे। उनका भविष्य अब भी वैसा ही अनिश्चित था।

गंधर्व रानी ने सुभद्रा की ओर देखा और सुभद्रा ने ऋषि से निवेदन किया, "महर्षि! समय होता है, जब क्षमा को कर्तव्य से ऊंचा स्थान मिलना चाहिये।"

गालव बोले, "सुभद्रे! तुमने जो कहा वह तुम्हारे योग्य ही है, पर हमारे शुष्क-जीवन में भावुकता को स्थान नहीं। संसार की व्यवस्था भावुकता के सहारे नहीं चलेगी। निर्मम कर्म की धारा ही उसे संयत रख सकती है।"

"ऋषि! पर क्या कर्म की निर्ममता को क्षमा से कोमल बना देने से संसार अधिक सुन्दर न हो जायेगा?"

"रानी ! तर्क में सभी कुछ कहा जा सकता है। कर्मधारा और सृष्टि की योजनायें तर्कों की तनिक भी चिन्ता न करके निर्दिष्ट दिशा की ओर प्रवाहित हैं।"

"तो ऋषिवर ! आप भैया और चित्रसेन को क्षमा नहीं करेंगे !"

"रानी ! मेरा उनसे कोई द्वेष नहीं। पर जब तक यह उत्तरदायित्व मुझ पर है, मुझे शोक है कि मैं आपकी इच्छा पूरी न कर सकूँगा। श्रीकृष्ण यदि चित्रसेन का वध नहीं करते तो मुझे दोनों को शाप देना होगा।"

"ऋषिवर !"

"रानी।"

"चित्रसेन के प्राणरक्षा का आश्वासन पाण्डवों ने नहीं मैंने दिया था। मैं फिर निवेदन करती हूँ कि उसकी प्राणरक्षा होना ही चाहेगी।"

"रानी ! पर अपराधी की प्राणरक्षा का भीषण उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं।"

सहसा सुभद्रा के हृदय में एक बल का संचार

हुआ। उसे लगा कि जैसे वह ऋषि से भीख मांग रही हो। उसकी मुख-मुद्रा कठोर हो गई। बोली, "ऋषिराज! जो आपका कर्तव्य कर्म हो कीजिये। सुभद्रा चित्रसेन की रक्षा करेगी ही।"

"भगवान तुम्हें सफलता दें।"

गालव फिर श्रीकृष्ण की ओर घूमे। बोले, "राजन्! तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग हो चुकी है चित्रसेन का वध तुम नहीं कर पाये हो। अब शाप अंगीकार करने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।"

श्रीकृष्ण बोले, "ऋषिराज! यादव ने जो कमाया है, उसका उपभोग वह करेगा। आप शाप दीजिये।"

गालव के शिष्य ने महर्षि की अंजलि में कमंडल से जल डाला और ऋषि ने शाप मंत्रों का उच्चारण किया। मंत्रोच्चार पूर्ण हो जाने पर ऋषि जिस समय जल डालने को प्रस्तुत हुए तभी सुभद्रा उनके निकट आकर खड़ी होगई। उस समय की सुभद्रा की मूर्ति दर्शनीय थी। उसका मुख रक्तवर्ण हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि वह अपने जीवन

की समस्त कमाई दांव पर लगाने आई है। उसका वह स्वरूप देख ऋषि ठिठक गये। सुभद्रा ने ऋषि को सम्बोधित कर अत्यन्त गम्भीर और शांत शब्दों में कहा,

"ऋषिवर! यदि सुभद्रा सती है तो यह अभिमंत्रित जल भूमि पर नहीं गिरेगा।" और ऋषि ने अनुभव किया कि वह उनकी अंजलि छोड़ने को प्रस्तुत नहीं है।

सुभद्रा ने शांत चित्त से हाथ बढ़ाकर अपनी अंजलि में वह जल ले लिया और फिर शिव की

भांति श्रीकृष्ण और चित्रसेन की मृत्यु को वह पाण्डुकुल बधू पान कर गई।

ऋषि ने देखा, जो और नहीं देख सके, मातृशक्ति का महान् अवतरण। और उन्होंने सुभद्रा को प्रणाम कर, चित्रसेन, श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओं को आशीष दे, शिष्यमंडली सहित वन को प्रस्थान किया। ऋषि के वन लौट जाने के पश्चात् युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा, "यादव श्रेष्ठ! कर्मचक्र का यह समस्त खेल मानव बुद्धि के लिये अगम है।" श्रीकृष्ण बोले,

"राजन्! इससे अति सुगम और कुछ नहीं।"

"कैसे?" पाण्डु पुत्र ने पूछा।

"अपने धर्म पर दृढ़ रहकर जो कर्तव्य सामने आये उसे निश्छल, निस्पृह रूप से करते जाना ही इस भेद को समझने की कुंजी है।"

सात्यकि ने सूचना दी, "सांध्य जल-विहार के लिये कालिंदी तट पर नौकायें उपस्थित हैं।"

भीम ने कहा, "क्यों वासुदेव! वृन्दावन चलने के विषय में क्या सम्मति है?"

कृष्ण बोले, "सात्यकि इस आयोजन के कर्ता-धर्ता हैं।"

"मुझे आपका सुझाव अत्यन्त पसन्द है।"

और तब श्रीकृष्ण, सुभद्रा, अर्जुन और सात्यकि ने जाकर चित्रसेन और उनकी रानी को नौका विहार के लिये निमंत्रित किया। चित्रसेन जो नवीन रागिनियाँ उस दिन देव-सभा में न गा पाये थे वे आज कालिंदी की लहरों के ऊपर व्रजभूमि के वातावरण में गायी गईं। और सब लोगों ने इस दैवी संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा की।"

कृष्ण ने कहा, "सुभद्रा के कारण आज यह संगीत सुनने को मिला।

और सब मस्तक कृतज्ञता से सुभद्रा की ओर झुक गये। इन मस्तकों में सबसे नीचा मस्तक गंधर्वराज चित्रसेन का था और उनसे नीचा उनकी रानी का।